REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 7 | APRIL - 2019

समकालीन हिंदी कविता में मानवीय संवेदना : एक चिंतन

डॉ. आनंद कुमार मिश्रा
अभिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गौतम बुद्ध राजकीय महाविद्यालय,
दर्शन नगर, अयोध्या, (उ0प्र0)

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में 1960-70 के बाद से अब तक के काल खंड को समकालीन कविता के रूप में जाना जाता है । दूसरे शब्दों में कहें तो समकालीन कविता से तात्पर्य उस कविता से है जो छठे दशक के बाद 'नई कविता' के दौर से आगे बढ़कर आज के समय की जटिलताओं को दर्ज कर रही है। यह कविता किसी एक खास 'वाद' (जैसे छायावाद या प्रगतिवाद) में बँधी नहीं है, बल्कि यह अपने समय की विसंगतियों, बाजारीकरण और मानवीय संवेदनाओं का जीवंत दस्तावेज़ है। समकालीन कविता हिंदी साहित्य में आधुनिकतावाद के बाद की ऐसी काव्यधारा है जो सौन्दर्यबोध के स्थान पर यथार्थ के धरातल पर कड़ी दिखाई देती है ।समकालीनता से तात्पर्य केवल वर्तमान समय में लिखी गयी कविता ही नहीं वरन यह एक ऐसी चेतना है जो अपने समय की विडम्बनाओं, संघर्षों और दबाओं को समझती और उनसे टकराती भी है । यह कविता सत्ता के प्रति विद्रोह और जन मानस के हितों की बात करने वाली कविता भी है । रघुबीर सहाय ने कहा है- "मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है ।"यह कविता दलित, स्त्री और आदिवासी समुदाय की एक जीवंत बहुआयामी अभिवयक्ति भी है । साथ ही साथ स्वतंत्रता के बाद के दौर की विसंगतियों, राजनीतिक पतन और आम आदमी के संघर्ष को इमानदारी से रेखांकित करती है । धूमिल, रघुवीर सहाय, नागार्जुन, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी और अनामिका जैसे कवि यथार्थ को प्रतिष्ठित करते हुए दिखाई देता हैं ।

आजादी के बाद (1950-60) में राष्ट्र निर्माण का जो सपना देखा गया था वह धीरे-धीरे टूटने लगा था । 1960 के दशक के बाद के भारत में भुखमरी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और तानाशाही जैसी समस्याओं से आम जन को जूझना पड़ रहा था । इसीलिए समकालीन कविता ने रोमांटिक भावबोध को छोड़कर यथार्थवादी और जनवादी स्वर को अपनाया । यह कविता अकविता या 'एंटी-पोएट्री'के दौर से बाहर निकल कर एक ठोस विचारधारात्मक धरातल पर स्थापित होती है । इस कविता के दौर के

बारे में जानने से पहले उस समय के बारे में जानना जरुरी है जिसमे यह कविता पैदा हुई है । आज के भयावह, विषमतामूलक समाज में जहां नैतिक मूल्य लगातार गिर रहे हैं, जहां मनुष्य को विकल कर देने वाली सच्चाईयां सामने हैं, जहां वर्गों के बीच की खाई को पाटने के लिए भोगवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद का सहारा लिया जा रहा है । जहां मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के बीच की दूरी लगातार बढ़ रही है वहां यह तो तय है कि समकालीन कविता अपने युग की इन सच्चाईयों से सीधे रूबरू होती है । धूमिल जो अपने जीवन में जोरदार ढंग से व्यवस्था का विरोध करते रहे हैं और मानते रहे कि कविता परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है वे भी कविता की शक्ति पर संदेह करते हुए कहते हैं कि- "कविता में जाने से पहले मई आपसे पूंछता हूँ कि इससे जब न चोली बन सकती है न चोंगा तो आपे कहो इस ससुरी कविता को जंगल से जनता तक धोने से क्या होगा । आपे कहो इसका मई क्या करूं ! तितली की पंख में बाधकर पटाखा भाषा के हलके में मई कौन सा गुल खिला दूं ।" यहाँ निराशा का स्तर बहुत ऊपर है । यह कहने की जरुरत नहीं कि यह प्रवृत्ति अकविता के दौर में भी दिखी ।

समकालीन कविता के दौर में मौजूदा जनतांत्रिक ढाँचे के प्रति जनता का आधिकारिक मोह भंग हुआ किन्तु इसका असर समकालीन कवियों में उग्र स्तर पर कविता में व्यवस्था विरोध को मुखर करने के रूप में लिया है । समकालीन कविता का स्वर राजनितिक है पहले की कविता में भी राजनीतिक था लेकिन इस समय की कविता में यह जरूर स्पष्ट हुआ कि परिवर्तन कौन करेगा और परिवर्तन के बाद समाज का स्वरुप कैसा होगा । समकालीन कविता में भी कवियों के दो वर्ग दिखाई पड़ते हैं । एक वर्ग के कवि यह समझते थे कि व्यवस्था बदलने का सबसे कारगर औज़ार सरकार है । इसलिए ये बड़े मनोयोग से सरकार बदलने में लग गए धूमिल मूलतः प्रतिपक्षी सरकारों के कवि के रूप में दिखाई पड़ते हैं । इसीलिए वे कहते हैं- "चाहे जिसे लाओ पर इसे बदलो " धूमिल जनतंत्र के स्वरुप को पहचान कर ही कविता को प्रतिपक्ष में खडा करते दिखाई पड़ते हैं । धूमिल कहते हैं- "मतलब कि इबादत से होकर सबके सब व्यवस्था के पक्ष में चले गए हैं । और प्रतिपक्ष में केवल कविता है ।" पिछले दशकों में संसदीय प्रणाली और संसदीय पार्टियों पर से जनता का विश्वास उठता गया । ये पार्टियां दिन में धक्का मुक्की करती है और रात के अँधेरे में जश्न मनाती हैं । ऐसी पार्टियां जनोत्थान के स्थान पर आत्मोत्थान के बारे में ही सोचती हैं । उदय प्रकाश कहते हैं- "ये तुम कौन से सरकार हो, राक्षस की तरह आते हो, तबाही मचाते हो, सब समेत बटोर कर ले जाते हो ।" आज की संसद जनता के साथ फरेब का एक संगठित विरोध है । यह संसद सिर्फ जनता के सवालों को उठाने के लिए है सवालों को हल करने वाली संस्था के रूप में इसका विकास नहीं हुआ । विष्णु नागर लोकसभा के छद्म चरित्र के बारे में लिखते हुए कहते हैं- "रोटी का सवाल उठाया जा रहा है लोकसभा में लड़ा जा रहा है, रोटी का सवाल उलझ गया है, लोक सभा में सुलझाया जा रहा है, राष्ट्रगीत गाया जा रहा है, राष्ट्रगीत गाया जा चुका है, रोटी का सवाल भुलाया जा चुका है ।"

कालान्तर में आलोक धन्वा और गौरव पाण्डेय जैसे एक धुर वामपंथी कवियों का वर्ग भी समकालीन कविता में उभरता हुआ दिखाई पड़ता है।जो सीधे गोला बारूद की बात नहीं करता बल्कि सामाजिक विद्रोह की विस्फोकता के साथ कविता में प्रस्तुत करने में विश्वास करता है । ये कवि समाज और साहित्य दोनों में परिवर्तन की गति को तेज करते हैं और इनकी कविता धीरे-धीरे जनता कहाम्दर्द बनकर उभरती दिखाई पड़ती है । तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष देवकांत बरुआ के बनारस आगमन पर गौरव पाण्डेय ‘भड़ुआ बसंत’ नामक कविता लिखते हैं और इस कविता में व्यवस्था के कलात्मक विरोध की पहचान झलकी दिखाई पड़ती है । वे लिखते हैं- “पेड़ों से आपातकालीन चुप्पी लिपटी हुई थी गरीबों की ख्वाहिशों की तरह पत्तियां धीरे-धीरे झड रही थीं ।और तमाम हरकतें धारा 144 से रद्द कर दी गयी थीं । जब शहर में एलान हुआ कि बसंत आ रहा है ।“ आगे फिर लिखते हैं- “गुस्से को विदा करो हाथ जोड़ लो अदब से, सिर झुकाते हुए तालियाँ बजाना सीख लो, तुम अभी नाचने गाने के लिए तैयार नहीं हुए जबकि मौसम खून की तरह रंगीन हो रहा है उठो बसंत आ रहा है ।“

समकालीन कविता जीवन यथार्थ से सीधे संपर्क साधती है । नागार्जुन की कविता में मनुष्य अपने पूरे परिवेश के साथ दिखाई पड़ता है जिसमे कौए भी हैं, सूअर भी हैं, कुत्ते भी हैं । नागार्जुन सिर्फ मनुष्य जीवन की बेहतरी की ही बात नहीं करते बल्कि उस जीवन की धडकनों को भी सुनते हैं जो पशु पक्षियों में सुनाई पड़ती हैं । इसी प्रकार अरुण कमल की कवितायेँ भी जीवन से गहरी आत्मीयता और लगाव से जुडी हुई दिखाई पड़ती हैं । अरुण कमल एक तरफ परम्परा में भी विश्वास करते हैं तो दूसरी तरफ व्यक्ति के मौलिक पहचान की भी बात करते हैं । वे मानते हैं कि परम्पराओं से प्रदत्त साधनों का ही सर्नात्मक उपयोग करके परिवर्तन को प्रत्यक्ष किया जा सकता है । इस बात को उनकी निम्न पंक्तियाँ उद्घाटित करती हैं- “यह अनाज जो बदल रक्त में, टहल रहा है तल के कोने –कोने, यह कमीज़ जो ढाल बनी है, बारिस सर्दी लू में, सब उधार है.............. ।“

अकविता में जहां नारी को लेकर आक्रोश, उबाल और आवेश अहि तो वहीँ साम्कालीन कविता में नारी के प्रति लगाव और आत्मीयता दिखाई पड़ती है । समकालीन कविता में नारी विभिन्न मधुर संबंधों में घिर कर फिर से अपनी अस्मिता स्थापित करती हैं । यहाँ नारी को माँ, प्रेमिका, बहन सभी रूपों में फिरसे पहचानना शुरू हुआ । माँ और पत्नी रूप में नारी को नए सौन्दर्य और स्वरुप में देखना शुरू हुआ । समकालीन कवि गृहस्थ प्रेम को भी रोमांटिक चमक से दूर अहमियत देते हैं- “तुम मिस्री की डली बन जाओ, मई दूध बन जाता हूँ, तुम मुझमे घुल जाओ ।“यहाँ दाम्पत्य जीवन एक संगठित शक्ति के रूप में दिखाई पड़ता है । समकालीन कवियों ने भाई-बहन के संबंधों को भी अमुल्यात्मक महत्त्व दिया उदय प्रकाश लखते है- “धिवरी थी दीदी तुम हमारे बचपन की, अचार की तलछट तेल अपनी कपास की बाती में सोखकर जलती रही ।“ समकालीन कविता में जहां व्यवस्था विरोध की गर्मी दिखाई पड़ती है तो वहीँ पारिवारिक सम्बन्ध के छीजते हुए रिश्ते को और मजबूत

करने की कोशिश भी है । स्त्री कविताओं ने पुरुष सत्तात्मक समाज के ढाँचे पर सवाल उठाया है और स्त्री अस्मिता को प्रतिष्ठित करने का भी सार्थक प्रयास किया है ।

समकालीन कविता राष्ट्रीय विपदाओं से कहीं अधिक जूझती जज़र आती है ।जब पंजाब में आतंकवाद चल रहा था तब समकालीन कवियों ने आतंकवादियों को निशाना बनाने के बजाय आम आदमी के अन्दर बैठे हुए डर को बहार निकालने का प्रयास किया । साथ ही लोकतंत्र को भी कठघरे में खडा कर देते हैं । समकालीन कविता में राजनीति का पतन और सत्ता का बर्बर चेहरा एक प्रमुख विषय के रूप में रहा । धूमिल ने अपनी कविताओं 'पटकथा' और 'मोचीराम' में व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है । जहां संसद को "तेली की वह घानी" कहा गया जिसमें "आधा तेल है,आधा पानी" । ये कविता स्वतन्त्रता के बाद के मोहभंग और लोकतंत्र की विसंगतियों को बेनकाब करती है । साथ ही साथ राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद के कारण धार्मिक उन्माद पैदा होने की स्थिति के बाद धर्मनिरपेक्षता के भीतर से साम्प्रदायिकता जैसा दानव कैसे निकला इसे स्पष्ट करते हुए आका सूरज-बाका सूरज में केदार कहते हैं- "मन को मंदिर बन जाना था, मन को मस्जिद बन जाना था, मुझको साहब बन जाना था, मुझको गिरिजा बन जाना था मगर ऐसा हो न पाया, हर मन में हैवान बस गया हर मन में शैतान बस गया ।"

वैश्वीकरण और 1990 के बाद के दौर में बाजारवाद ने हिंदी कविता को बहुत गहराई से प्रभावित किया । आज की कविता उपभोक्तावाद, सांस्कृतिक क्षरण और मानवीय संबंधों के व्यावसायीकरण पर भी सवाल उठाती है । कवि देखते हैं कि "साड़ी दुनिया बाज़ार बन चुकी है" और मनुष्य एक 'वस्तु' की तरह बर्ताव का सामना कर रहा है ।

समकालीन कविता जिस प्रकार से जीवन से बिना किसी पूर्वाग्रह से जुडती है उसी प्रकार भाषा से भी बिना किसी भेदभाव के जुडती है । समकालीन कविता की भाषा सिर्फ सुनने, देखने और पढने की भाषा नहीं है बल्कि यह महसूस करने करने की भी भाषा है । समकालीन कवियों ने साधारण से साधारण शब्दों के माध्यम से अपने समय की सत्ता और बदल रहे रिश्तों को आसानी से कह्सुस करा दिया- "खतरा बढ़ रहा है अब उन्हें साथ सोई पत्नी के करवट बदलने से भी डर लग रहा है । पत्ता हिलने से, बच्चों के हंसने से, अपनी हंसी से भी डर लगता है । यहाँ भाषा महसूस कराने के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई पड़ती है । और यह मुक्तिबोध की इस पंक्ति की "कविता जनचरित्रीय है" को पूरी तरह से चरितार्थ करती है । समकालीन कविता की भाषा बिम्बों को लेकर न तो अतिसय दुराव दिखाती है और न ही अतिशय लगाव ही दिखाती है ।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि समकालीन कविता यदि अपने समय की जनता के आंदोलनात्मक चरित्र को पहचानती है वह हिंसा, घेराव, लाठी चार्ज कर्फ्यू की शिनाख्त करती है तो साथ ही वह मनुष्य और मनुष्य के बीच में घटित होते हुए राग धर्म को भी स्वर देती है । उसमे यदि एक तरफ रोटी, चूल्हा, पतीली है तो दूसरी तरफ चिड़िया, फूल और पट्टी भी है । इसमें आग है

तो राह भी है । समकालीन कविता समाज में उपेक्षित स्त्री, दलित और आदिवासी समाज की स्थिति तथा उनकी समस्याओं को मुखर रूप में हमारे सामने रखते हुए उनमे मानव मूल्यों की खोज करती है । इस कालखंड के कवियों ने सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों के साथ- साथ वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के प्रभाओं को भी अपनी रचनाओं में उजागर किया है । इन परिवर्तनों के बीच मानवीय मूल्यों की प्रासंगिकता और उनका संकट एक प्रमुख विषय रहा है । समकालीन हिंदी कविता में मानवीय ,उल्यों का चरित्र जटिल और बहुआयामी है, जिसे समकालीन कविता ने बेहद मुखर और स्पष्ट रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है ।

सहायक ग्रन्थ :-

1- समकालीन हिंदी कविता, परमानंद श्रीवास्तव
2- हिंदी कविता का समकालीन परिदृश्य, डॉ रुचिरा धींगरा
3- कविता के नए प्रतिमान, डॉ नामवर सिंह
4- हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ नगेन्द्र
5- हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल
6- समकालीन कविता, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
7- समकालीन हिंदी कविता का परिदृश्य, डॉ प्रदीप कुमार शर्मा